International Journal of Research in Social Sciences
Vol. 9, Issue 3, March - 2019,
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell’s Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

गुप्तोत्तर कालीन भारत में शूद्रों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति : एक ऐतिहासिक अध्ययन

मुकेश कुमार पासवान
;यू० जी० सी० नेटद्ध
शोधार्थी ;इतिहास विभागद्ध
भू० ना० मं० वि० वि० मध्ेपुरा ;बिहारद्ध

सारांश :-

सातवीं शताब्दी का भारतीय सामज वर्ण और जातिप्रथा के आधर पर संगठित था। चारों वर्णों ;ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रद्ध में धर्मिक अनुष्ठानजनित पवित्राता थी । शूद्र शिल्प और भृति के अतिरिक्त कृषिकर्म करते थे । कुछ क्षेत्रों ;सिंध्द्ध में शूद्र शासक भी होते थे । मतिपुर का राजा भी चीनी यात्राी के अनुसार शूद्र ही था । शूद्रों की अनेक उपजातियाँ भी थी, जैसे निषाद, पारशव, पुक्कुस इत्यादि । अस्पृश्य ;अंत्यजद्ध जातियों का उल्लेख भी ह्वेनसांग करता है । ऐसी जातियों में चांडाल, मतप, श्रवपाक, कसाई, जल्लाद आदि प्रमुख हैं । अस्पृश्यता की भावना बलवती थी । चीनी यात्राी का कथन है कि चंडाल, मेहतर आदि अछूत जातियाँ नगर के बाहर ऐसे मकानों में रहती थी, जिन्हें विशेष चिन्हों से पहचाना जा सकता था । उनका स्पर्श और संसर्ग वर्जित था ।

मूल शब्द :-

अस्पृश्यता, सेवावृत्ति, अंत्यज, भृतक, चर्मकार, चांडाल, श्रवपाक, पारशव, पुक्कश, तंतुवाय ।

प्रस्तावना :-

गुप्तोत्तर काल में शूद्रों की सामाजिक, आर्थिक जीवन में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन देखने को मिलते हैं । तत्कालीन साहित्यक एवं पुरातात्विक स्रोत इस विषय पर प्रकाश डालते हैं । गुप्तोकालीन समाज वर्ण एवं जाति व्यवस्था पर आधरित था । समाज में चार प्रमुख वर्गों ;ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रद्ध के अतिरिक्त अनेक जातियाँ एवं उपजातियाँ भी थी । विभिन्न वर्गों के लिए आवास, न्याय, दंड एवं उत्तराधिकार संबंधे नियम बनाए गए । उदाहरणस्परूप वृहसंहिता के अनुसार ब्राह्मणो के घरो में पाँच, क्षत्रियों के चार, वैश्यों के तीन तथा शूद्रों के घरों में दो कमरें होने चाहिए । कमरों के आकार, रंगों के प्रयोग और सूद की दरें भी वर्ण के अनुसार ही निर्धरित की गई । इसके बावजूद वर्ण व्यवस्था सुचारू रूप से हमेशा नहीं चली । संकटकाल में निर्धरित व्यवसाय को छोड़कर दूसरा व्यवसाय अपनाने की अनुमति स्मृतिकारों ने दी । वृहस्पति के अनुसार संकटकाल में ब्राह्मण, दासों और शूद्रों का भी अन्न ग्रहण कर सकता था । शूद्र सेवावृति के अतिरिक्त शिल्प, व्यवसाय-वाणिज्य भी कर सकते थे । कुछ शूद्रों ने तो सैनिक कार्य भी किए । इस प्रकार वर्ण व्यवस्था का बंध्न ढ़ीला पड़ रहा था । शूद्रों की स्थिति अब पहले से अच्छी थी । अस्पृश्यता की भावना प्रचलित था अछूतों का स्पर्श वर्जित था । काहियान के विवरण से ज्ञात होता है कि अछूत ;चांडालद्ध वस्तियों से बाहर रहते थे और

निकृष्ट कर्म करते थे ।

चार वर्णों के अतिरिक्त अलबरूनी अंत्यजों का भी उल्लेख करता है । उनकी स्थिति शूद्रों से नीची थी । वे विभिन्न प्रकार के कार्यों और व्यवसायों में संलग्न थे । उसकी गणना किसी वर्ण या जाति में नहीं होती थी । अंत्यजों की आठ श्रेणियों का उल्लेख अलवरूनी करता है । इनमें चर्मकार, जुलाहा, टोकरीबुनने वाला, वाजीगर, मछुआरे, शिकारी इत्यादि में वैवाहिक संबंध होते थे । चार वर्ण के लोग इनके साथ नहीं रहते थे । अंत्यजों को नगरों और गाँवों के बाहर रहना पड़ता था । हादी, डोम, चांडाल और बड़हातु की गणना किसी जाति या व्यावसायिक संघ में नहीं होती थी । उन्हें एक अलग वर्ग माना गया था । उन्हें सामान्यतः शूद्र पिता और ब्राह्मण माता का अवैध संतान माना जाता था । उन्हें गंदा काम करना पड़ता था ।

गुप्तोत्तर कालीन भारत में शूद्रों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति :-

पूर्व मध्यकालीन भारत में अछूतों, चंडालों, अस्पृश्य जातियों अर्थात् शूद्रों की स्थिति के अध्ययन का मुख्य स्रोत कौटिल्य का अर्थशास्त्रा है और उसके पूरक हैं मेगास्थनीज रिपोर्ट के कुछ अंश तथा अशोक के उत्कीर्ण लेख । शूद्र वर्ण के कृत्यों का निरूपण करने में कौटिल्य ने धर्मशास्त्रा के पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया है । उनका कहना है कि शूद्र का निर्वाह द्विजों की सेवा से होता है । किन्तु ये शिल्पियों, नर्तकों, अभिनेताओं आदि का व्यवसाय करके भी अपना निर्वाह करते हैं । ये व्यवसाय स्पष्टतया स्वतंत्रा थे और उनमें द्विजों की सेवा करना आवश्यक नहीं था ।

कौटिल्य ने धर्मसूत्रा की जिस पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग किया है, उससे यह प्रतीत होता है कि शूद्रों को अपनी जीविका के लिस पूर्णतया उच्च वर्ण के मालिकों पर निर्भर रहना पड़ता था । अधिकांश शूद्र पहले ही की तरह, कृषि मजदूरों और दासों के रूप में काम करते रहे। धर्मसूत्रों से ज्ञात होता है कि दासों को घरेलू कार्यों में लगाया जाता था । कौटिल्य ही एकमात्रा और प्रथम ब्राह्मण लेखक है जिनसे पता चलता है कि दासों को बड़े पैमानों पर कृषि उत्पादन कार्य में लगाया जाता था । मौर्य साम्राज्य में दासों, कर्मकारों, शिल्पियों और आदिवासियों का, जो कि स्पष्टतया शूद्र वर्ण के थे , बहुत बड़ा नियोजक था । इस दृष्टि से इस काल का कृषि उत्पादन संगठन ग्रीस और रोम के संगठन से कुछ हद तक मिलता-जुलता था ।

मेगास्थनीज के इंडिका और कौटिलय के अर्थशास्त्रा से ज्ञात होता है कि मौर्य काल में शूद्रों की आर्थिक स्थिति में बहुत से परिवर्तन हुए । पहली बार शूद्रों को, जो अभी तक कृषि मजदूर थे, राज्य की भूमि में बटाईदारी भी दी जाने लगी । किन्तु कृषि उत्पादन के लिए राज्य की ओर से शूद्रों को बहुत बड़े पैमाने पर दासरों और श्रमिकों के रूप में नियोजन किया जाता था। नीचे दर्जे के लोग या तो खास-खास किसानों के अधीन अथवा स्वतंत्रा रूप से काम करते थे और गाँवों में रहते थे ।

गुप्तकाल में अछूत, दलित, अस्पृश्य, डोम अर्थात् शूद्रों की स्थिति के अध्ययन के लिए विष्णु याज्ञवलक्य, नारद, वृहस्पति और कात्यान स्मृतियाँ मुख्य स्रोत हैं । इनमें याज्ञवल्क्य स्मृति सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रतीत होती है क्योंकि बाद में चलकर उत्तर भारत में यही प्रमाण के रूप में अपनाई गई। इस स्मृति में शूद्रों के विरू(मनुस्मृति में किए गए अतिवादी प्रावधनों को या तो खंडित कर दिया गया है या उनकी अवहेलना कर दी गई है और उसमें ब्राह्मणों के लिए दागने ;अंकनद्ध, और देश से निकालने ;निष्कासनद्ध का दंड

विहित किया गया है । कामदंक के नीतिसार, भरत के नाट्यशास्त्रा, वात्सयायन के कामसूत्रा, अमर सिंह के अमरकोश और वाराहमिहिर की वृहत्-संहिता जैसे तकनीकी ग्रंथों से भी इस काल में शूद्रों की स्थिति के विषय में कापफी जानकारी मिलती है ।

उत्कीर्ण लेखों में वर्ण के रूप में शूद्रों का उल्लेख नहीं है, किन्तु करदायी किसानों ौर कारीगरों का बार-बार उल्लेख हुआ है और कारीगरों के संघ की भी चर्चा है । इससे हमें शूद्रों की आर्थिक स्थिति में हुए परिवर्तनों का स्वरूप पता लगाने में सहायता मिलती है । सातवी शताब्दी ई. के पूर्वा(में हुआन-चाई ने शूद्रों को खेतिहरों के वर्ग के रूप में वर्णित किया है। नृसिंह पुराण से इस वर्णन की पष्टि होती है । वहाँ कृषि को शूद्र का कर्म बताया गया है । किन्तु प्रतीत होता है कि यह महत्वपूर्ण परिवर्तन गुप्तकाल में हुआ होगा । कृषक वर्गों में बहुत बड़ा भाग शूद्र का है ।

इस काल में हमें शूद्र राजाओं की चर्चा मिलती है, जैसे सौराष्ट्र, अवंति, अवुर्द और मालवा के । इनके साथ-साथ परंपरागत शूद्र, आभीर और मलेच्छ राजाओं का भी उल्लेख मिलता है, जो सभी सिंधु और काश्मीर प्रदेशों में शासन करने वाले बताए गये हैं । पार्जिटर ने उनका समय चौथी शताब्दी ईसवी सन् बताया है । परन्तु उन्हें जो शूद्र कहा गया है इसका कारण यह नहीं कि ये शूद्र वंश के थे, बल्कि इसलिए कहा गया है कि इन जनजातिय या विदेशी शासकों ने ब्राह्मणों को विशेष संरक्षण नहीं प्रदान किया था और वे ब्राह्मणधर्म के अनुयायी नहीं थे ।

गुप्तकाल में डोम जाति के लोग उत्तर भारत में बहुत बड़ी तादाद में अदूत माने गये । संभवतया गुप्तकाल में जाति के रूप में आविर्भूत हुए । जैन स्रोत उन्हें अपेक्षित वर्ग का मानते हैं। शायन ये एक आदिवसी कबीले ;जनद्ध के लोग थे, जो ब्राह्मण समाज के निचले वर्गों में मिला दिए गए । किरात, शबर और पुलिंद ये वन्य जातियाँ म्लेच्छों के साथ अमरकोश में शूद्र वर्ग में समाविष्ट की गई है जिससे प्रकट होता है कि आदिवासी जनसमुदाय बड़ी संख्या में शूद्र सामुाय में लीन होते जा रहे थे । ऐसा प्रतीत होता है कि इस काल में न केवल अस्पृश्यों की संख्या में वृ(हुई, बल्कि अस्पृश्यता की प्रथा भी कुछ दृढ़ हुई । पफाहियान ने बताया है कि जब कोई चंडाल किसी नगर या बाजार के भीतर प्रवेश करता था तो वह एक लकड़ी को पीटता चलता था, ताकि लोग पहले ही समझ जाएँ कि चंडाल आ रहा है और उसके स्पर्श से बचने की कोशिश करें । किन्तु इस अस्पृश्यता नियम का पालन मुख्यतया चंडाल के विषय में किया जाता था । ऐसा कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं मिलता है कि डोम अस्पृश्य माने जाते थे । इसी प्रकार इसका भी कोई प्रमाण नहीं मिलता है कि डोम्ब अस्पृश्य माने जाते थे । इसी प्रकार इसका भी कोई प्रमाण नहीं मिलता है कि चर्मकार, जो परवर्ती काल में अछूत समझे जातने लगे, इस काल में भी वैसा माने जाते थे । चंडालों और अन्य अछूतों को छोड़कर ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता है कि कुछ शूद्र जातियों का पानी निषि(था । मृच्छकटिक में कहा गया है कि ब्राह्मण और शूद्र एक ही कुएँ से पानी भरते थे ।

सर्वप्रथम शांतिपर्व में घोषणा की गई है कि चारों वर्णों को वेद सुनाना चाहिए और शूद्र से भी ज्ञात प्राप्त करना चाहिए । यह विधन मनु के विधनों के नितान्त विरु(है जिन्होंने ऐसे मामलों में कठोर दंड बताया है । शांतिपर्व का यह उपदेश शूद्रों के वेद पढ़ने के अधिकार के विरु(ब(मूल धरणा के कारण अनसुना कर दिया गया होगा । परन्तु इतिहास-पुराण पढ़ने के द्वार शूद्रों के लिए वस्तुतः खोल दिए गए । विद्या की दूसरी शाखा नाट्यशास्त्रा, जिसका द्वार शूद्रों के लिए खुला हुआ था, उसे पंचमवेद कहा गया है

जिसे चारो वेदों के सार से रचा गया है और जिसका उपयोग सभी जातियों के लोग कर सकते हैं । इतना ही नहीं, योग और सांख्य दर्शन भी, जो संभवतया गुप्तकाल में ही अपने चरम रूप में विकसित हुए थे, शूद्रों के लिए वर्जित नहीं थे।

गुप्तकाल में भी कई शिक्षित शूद्रों के उदाहरण दिखाई पड़ते हैं । याज्ञवल्क्य के एक श्लोक से प्रकट होता है कि भृतकों के लिए भी अध्यापक होते थे । मृच्छकटिक में न्यायाधेश शकार को पफटकारता है- अरे नीच, तुम वेद की बात कर रहे हो, और तब भी तुम्हारी जीभ नीचे न गिरी । पिफर भी इसमें कोई संदेह नहीं कि उच्च वर्णों की तुलना में शूद्रों का सांस्कृतिक स्तर नीचे था । उदाहरणार्थ, नाटकों में स्त्रियों और निम्न जाति के पात्रा गँवारों की भाषा प्राकृत बोलते थे, जबकि उच्च वर्णों के पात्रा शिक्षितों की परिष्कृत भाषा संस्कृत बोलते थे लेकिन नाट्यशास्त्रा में कहा गया है कि रानियाँ, वेश्याएँ और कलाकार महिलाएँ परिस्थिति के अनुसार संस्कृत बोल सकती हैं । कभी-कभी प्राकृत की विभिन्न बोलियों के प्रयोग में भी जातीय स्तर का विचार किया जाता था । नाटकों में ऊँची हैसियत के पात्रा सौरसेनी बोलते थे और नीचे पात्रा मागधी प्राकृत । इन सबों से पता चलता है कि निम्न वर्गों को लिखने-पढ़ने की शिक्षा नहीं दी जाती थी, जिससे वे परिमार्जित भाषा संस्कृत बोल सकें ।

गुप्तोत्तर काल में कई सुधरवादी विचारधराओं, विशेषकर वैष्णव सम्प्रदाय का उदय हुआ, जिससे बहुत हद तक शूद्रों को धर्मिक समता प्राप्त हुई । वैष्णव ध्र्म इस काल में विकास की चोटी पर पहुँच गया था, जब न केवल उत्तर भारत में अपितु दक्षिण और पश्चिम भारत के कई भागों में इस सम्प्रदाय के अद्वितीय प्रभाव को प्रमाणित करने वाले पुरालौकिक, मुद्रात्मक और मूर्ति संबंधी अभिलेख भारी संख्या मे मिलते हैं । महाभारत और पुराणों में इस सम्प्रदाय के जो सि(ांत प्रतिपादित हैं, उनसे प्रकट होता है कि ब्राह्मण ध्र्म की प्राचीन कट्टरपंथी परंपरा की भाँति इस वैष्णव सम्प्रदाय ने शूद्रों और अस्पृश्यों के लिए अपना द्वारा बंद नहीं रखा, बल्कि उन्हें भी ईश्वर को जानने और मोझ प्रापत करने का अध्किार दिया । वैष्णव ग्रंथों में इस बात पर हमेशा जोर डाला जाता रहा कि कृष्ण, नारायण या वासुदेव की भक्ति के द्वारा स्त्रियाँ और शूद्र भी मुक्ति पा सकते हैं । भगवान को यह घोषित करते हुए चित्रित किया गया है कि ब्राह्मण से लेकर श्वपाक तक सभी मेरी भक्ति से पवित्रा हो जाते हैं । यदि अत्यज एक बार भी ईश्वर का नाम लेता है तो वह जन्म मरण के बंध्न से मुक्त हो जाता है ।

लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं है कि गुप्तोत्तर काल में शूद्रों के धर्मिक अध्किारों में वृ(ि हुई और कई कर्मानुष्ठानों के विषय में उन्हें तीनों उच्च वर्णों क समकक्षता मिली । ऐसा मत वयक्त किया गया है कि शूद्रों के आध्यात्मिक उत्थान के पीछे ब्राह्मणों का स्वार्थ काम कर रहा था क्योंकि वे चाहते थे कि अध्कि से अध्कि लोग ब्राह्मणीय कर्मों का अनुष्ठान करें । किन्तु पूर्वकाल में भी तो ब्राह्मणों का ऐसा स्वार्थ रहा होगा, जबकि ऐसी प्रवृत्ति का आभास बहुत कम मिलता है । वास्तव में शूद्रों के धर्मिक अध्किारों में वृ(ि उनकी भौतिक स्थिति में यज्ञ कराने में समर्थ हुए क्योंकि यज्ञ कराने की योग्यता व्यववहन क्षमता के साथ निकटतः संब(मानी जाती थी, जो स्वाभाविक ही है ।

निष्कर्ष :-

गुप्तोत्तरकाल में अछूतों, दलितों, चंडालों, डोमों, अस्पृश्य जातियों अर्थात् शूद्रों की स्थिति में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए । इस

काल में न केवल मजदूरों, कारीगरों और भारवाहकों की मजदूरी की दरें बढ़ी, बल्कि दास और मजदूर लोग धीरे-धीरे बटाईदार और किसानें होते जा रहे थे । सातवीं सदी तक पहले-पहले शूद्र बड़े पैमाने पर किसान के रूप में दिखलाई पड़ते हैं । यह परिवर्तन शूद्रों की राजनीतिक सहविध्कि स्थिति में व्यापक रूप में प्रतिपफलित हुआ है । शांतिपर्व में शूद्र मंत्री नियुक्त करने का जो उपेश दिया है, इसको तो अध्कि महत्व नहीं भी दिया जा सकता है । किन्तु इसमें संदेह नहीं कि शिल्पी संघों के प्रधन जिला प्रशासन के कार्य से जुड़े थे, और संकट की घड़ियों में शूद्रों को शस्त्रा उठाने का अध्किार मिल गया था । वर्ण विषयक कानूनों में कुछ ढिलाई आई औार शूद्रों के प्रति बरते जानेवाले कई निष्ठुर नियम रद्द किए गए ।

गुप्तोत्तर काल में शूद्रों के धर्मिक अध्किार में कापफी वृ(हुई । हाँ, अस्पृश्यों की सामाजिक स्थिति पहले से भी अध्कि बुरी हुई । यद्यपि वे सि(ांत शूद्र माने जाते थे, किन्तु सभी व्यावहारिक विषयों में वे पृथक् समुदाय ही थे । पिफर भी ऐसा सोचना गलत होगा कि गुप्तकाल में शूद्रों का काई अन्य वर्ग भी सामाजिक दृष्टि से अधेगत था, भोजन और विवाह के रिवाज के बारे में इसका कोई साक्ष्य नहीं मिलता है । जहाँ तक शिक्षा का प्रश्न है, शूद्रों को रामायण, महाभातर और पुराण सुनने का और कभी-कभी वेद सुनने का भी अध्किार निस्संदेह रूप से मिल गया था । सभी बातों पर विचार करते हुए हम कह सकते हैं कि गुप्तोत्तर काल में शूद्रों की स्थिति में जो आर्थिक, राजनीतिक, सहविध्कि, सामाजिक और धार्मिक परिवर्तन हुए, वे उक्त समुदाय की बदलती हुई सामाजिक स्थिति के सूचक है ।

सन्दर्भ सूची :-

०१. आर.एस.शर्मा, शोसल चेंज इन अर्ली मेडिवल इंडिया ;सर्का एडी ५००-१२००द्ध
०२. आर.एस.शर्मा, शूद्राज इन संशिएट इंडिया, परिशिष्ट-२
०३. पाणिनि, टप् २ण्६२ण
०४. अर्थशास्त्रा, प्प ४ण
०५. आर.एस.शर्मा, शूद्राज इन संशिएट इंडिया, पृ० १६७-७८
०६. जटाशंकर प्रसार मिश्र, अलबेरूनी के भारत का राजनीतिक और सामाजिक अध्ययन, काशी हिन्दू वि० वि० वाराणसी, १६६३
०७. आर भूषण, एंसिएंट इंडियन हिस्ट्री, श्री पबिल्शंस एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली-२०१०
०८. के.एल. चंचरीक दलितस् इन एंसियंट एण्ड मेडिवल इंडिया, श्री एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, २०१०
०६. एस. गुप्ता, भारत में जाति व्यवस्था, सूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली-२०११
१०. रश्मि पाठक, प्राचीन भारत का समााजिक इतिहास, अर्जून पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली २०१२
११. देव प्रकाशन, जातिगत सामाजशास्त्रा, ओमेगा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, २०१७

१२. के.सी. जैन, प्राचीन भारत का इतिहास : ६५० ई० में से १२०० ई० तक : यूनिवर्सिटी पब्लिकेश्न, नई दिल्ली, २०१२

१३. के. एल. चंचरीक, भारतीय दलित जाति कोश, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली २०१२.